कलंक

मैं एक ऐसी छाँव हूँ जो धूप से न मिली,

लेकर भी मुझे, कोई चाहे न चले!

हवा के झोंकों में गुमनाम बह गई,

जो अपने थे कभी, उन्हें भी पराया कह गई।

मैं वह नाम हूँ जो पुकारा न जाएगा,

पर साए-सा हर ओर नज़र आएगा।

पलकों के कोनों में बह रही जो नमी–

क्या वही थी कलंक की बेबसी?

मैंने चाहा था संग जिन किसी का,

पर मैं बस लांछन बनी।

क़िस्मत की साँसों में अब भी धड़कती सदा,

पर दुनिया ने मुझसे छीन लिया वजूद मेरा।

मैं नहीं चाहती कोई सहानुभूति दे,

बस अपने शब्दों से मिटा दे वह कलंक जो लगे!

कि मैं भी हूँ, मैं भी थी–

एक अधूरी कहानी-सी!

— रचयिता: कोमल तिवारी - बी. बी. ए. प्रथम वर्ष